RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारतीय अभिलेखों में वर्णित लौकिक एवं धार्मिक मान्यताएं

डॉ0 प्रशान्त उपाध्याय

असिस्टेन्ट प्रो0–प्राचीन इतिहास विभाग स्व0रामराज वर्मा पी0जी0कालेज सारंगपुर, सुलतानपुर(उ0प्र0)

पूर्व मध्य युगीन समाज धर्म प्राण था। देश में शिव, विष्णु, दुर्गा के अतिरिक्त भी अनेक देवी–देवताओं का भजन–पूजन होता था। अतः देश भर में देवी–देवताओं के अनेकानेक मन्दिर और देवालयों का निर्माण किया गया। प्रत्येक धर्म के अन्तर्गत अनेक मतावलंबी हो गये थे।[1] देव–देवियों की मूर्तियों का निर्माण, उनकी उपासना में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। देव–देवियों के साथ ही गंधर्व, भूत–वेताल, नाग, वृक्ष, पितृ आदि पूजकों के भी समुदाय थे। दसवीं सदी का अरब यात्री मुतहिर(हिजरी 375, सन् 985–86 ई0) भी अनेक धार्मिक भेदों का समर्थन करता है। उसके अनुसार भारत में नौ सौ सम्प्रदाय हैं। इनमें से सिर्फ निन्यानबे का हाल मालूम है। ये पैंतालीस धर्मों के अन्तर्गत हैं। और ये सब भी चार सिद्धान्तों में सीमित हैं। इनके भी दो ही सही विभाग हैं– समनी (श्रमण–संन्यासी) और बरहमनी (ब्राह्मण)।[2]इसमें संदेह नहीं कि इन्हें समझ पाना किसी विदेशी के लिए संभव नहीं था। प्रत्येक धर्म पर उसके सन्यासियों और आचार्यों का प्रभाव था।

देवी–देवताओं का पूजन

सूर्य–पूजनः –

शैव, शाक्त और वैष्णव मतों के मुख्य देवी–देवताओं के अलावा भी अन्य देवी–देवताओं की उपासना समाज में की जाती थी। इनमें सूर्य पूजन का विशेष स्थान था। सूर्य–पूजकों की दृष्टि में सूर्य की सत्ता सर्वोपरि थी। वे कार्यसिद्धि के कारण और जगत्नियंता थे। सूर्य पूजा की परपंरा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। सूर्य आदित्य और ग्रह के रूप में पूजित थे।[3] वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्य काल तक सूर्य–उपासना का सिलसिला बराबर जारी रहा। मुलतान में सूर्य का एक प्रसिद्ध मन्दिर था, जहां देश के हर कोने से दर्शनार्थी आते थे। मूलस्थानपुर की सूर्य–मूर्ति स्वर्ण की थी। वह अनेक बहुमूल्य धातुओं से अलंकृत थी। मन्दिर में हर समय विभिन्न देशों के भक्त उपस्थित रहते थे। महिलाएं नृत्य, संगीत, धूप–दीप, पुष्प, गंध आदि से सूर्य– देव की पूजा करती थी।

अरब यात्रियों ने भी सूर्य–पूजा का उल्लेख किया हैं। मुल्तान के सूर्य–मन्दिर के विषय में अलबीरूनी लिखता है– ''सूर्य को अर्पित की गई उनकी सबसे बड़ी मूर्ति आदित्य कहलाती थी। वह लकड़ी की थी और चमड़े से ढकी थी। उसकी दोनों आंखों में दो लाल पदम राग थे। कहा जाता है कि वह पिछले 'कृत युग' में बनी[4] अलकाजविनी और मुकदद्सी भी सूर्योपासना का समर्थन करते है।''

एलोरा की गुफा और खजुराहों के मन्दिर में सूर्य की मूर्तियां पूजन हेतु उत्कीर्ण की गई थी। खजुराहों में तो सूर्य की अनेक आकार–प्रकार की कई प्रतिमाएं मिलती हैं। सन् 1026 –27 ई0 में तो सूर्य की अनेक आकार – प्रकार की कई प्रतिमाएं पूजन हेतु निर्माण किया गया।[5] उड़ीसा में कोणार्क का सूर्य मन्दिर पूर्वी भारत में सूर्य–पूजन का समर्थन करता हैं। मध्य भारत में भी सूर्य पूजा हेतु मन्खेरा में प्रतीहारों ने मन्दिर बनवाया था। ग्वालियर, मंदसौर और राजस्थान के चितौड़ तथा औसिया के सूर्य मन्दिर इस क्षेत्र में सूर्य–पूजा का समर्थन करते हैं।

सूर्य की उपासना तरूणादित्य देव, इन्द्रादित्य देव, गंगादित्य, लोकार्क आदि नामों से की जाती थी। गुजरात में सूर्योपासना का चलन था। दक्षिण भारत में भी सूर्य–पूजा की जाती थी। राष्ट्रकूट शासन सूर्य देवता के उपासक थे।[6] करगद्रि के एक मन्दिर में विष्णु – शंकर – भास्कर (सूर्य) की पूजा सम्मिलित रूप से होती थी। दक्षिण के ही पापानाथ और दुर्गा मन्दिरों में भी संभवतया आदित्य– पूजन का आयोजन किया जाता था। भारत में सूर्य–पूजन को लोकप्रिय बनाने में भग, भोजक और शकद्वीपी ब्राह्मणों का हाथ मुख्य रूप से था। प्रतीहार नरेश रामभद्र और विनायक पालदेव आदित्य भक्त थे। गहड़वाल वंश भी सूर्योपासना का आदर करता था। नरेश जयचंद ने लोकार्क भगवान के नाम पर आधा गांव दान में दिया था।

चन्देल–काल में भी बुन्दलेखंड में भी सूर्य पूजा का प्रचार था। वैष्णव तथा शैव दोनों समान रूप से सूर्य की पूजा करते थें। खजुराहों में छत्र को पत्र नामक एक सूर्य मन्दिर हैं, जिससे सूर्य पूजा के प्रचार का बोध होता हैं। इसके अतिरिक्त चन्देलों के अनेक शिलालेखों से भी इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता हैं। उस समय धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के पूर्व अन्य देवताओं के साथ सूर्य की भी पूजा होती थी। सम्भवतः इसी कारण लगभग सभी चन्देल दान पत्रों में सूर्य का निर्देश शिव तथा विष्णु के साथ किया गया हैं। इसी प्रकार के उल्लेख गहड़वालो, चाहमानों, कलचुरियों, पालों तथा परमारों कें अभिलेखों में प्राप्त होते है।

गणेश पूजनः पूर्व मध्य युग में बनें भव्य मन्दिरों में उत्कीर्ण देवी–देवताओं का अध्ययन यह स्पष्ट दर्शाता है कि अन्य देवों के मानने वाले मूर्ति–पूजक छोटे सम्प्रदाय भी थे।सूर्य के बाद गणेश–पूजा[7] का भी समाज में प्रचलन था। गणेश को पंचायतनदेवों में सम्मिलित कर लिया गया था।[8]

वेदों में गणपति 'ब्रह्मणस्पति' नाम से जाने जाते थे। ब्रह्मणस्पति के मंत्रों में 'गणपति' शब्द विशेष रुप से प्रयुक्त था। वे 'महाहस्ती' 'एकदन्त' 'वक्रतुण्ड' और 'दन्ती' नाम से भी

RRIJM 2015, All Rights Reserved

विख्यात थे।[9] वैसे गणपति का अर्थ गणों या समुदायों का स्वामी हैं। रुद्र से संबंधित 'मरुतों' के स्वामी गणपति है। शतरुद्री में उन्हें 'गणपति' और 'सेनानी' कहा गया है। उनके अन्य नामों में 'गणेश' और 'विनायक' भी व्यवहृत है। कांलातर में वे प्रथम देवता बने अन्य देवों के साथ उनका उल्लेख होने लगा। वे अनिष्ट के नाशक 'शाल संकट' 'कूष्मांड राजपुत्र' 'उस्मीत' और 'देव–यजन' है।

कार्तिकेय और गणेश दोनों शिव–पार्वती के पुत्र थे। परन्तु कार्तिकेय की अपेक्षा गणेश अधिक जनप्रिय देवता थें। कार्तिकेय का प्रभाव, गुप्तकाल की तुलना में पूर्व मध्य युग में कम हो गया था। दक्षिण में कार्तिकेय महासेन, मुरुग, वेलायुध नामसे पूजित थे। आंठवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एलोरा की दो गुफाओं में गणपति का चित्रण किया गया। पूर्व मध्य युग में गणेश सम्प्रदाय के छह भेद हो गये। ये महागणपति, हरिद्रा गणपति, स्वर्ण गणपति, संतान गाणपत्य, नवीनत तथा उन्मत–उच्छिष्ट कहलाते थे। ये गणपति की विभिन्न रुपों में उपासना गणेश, पंचानन, लम्बोदर, सिद्धि विनायक, गजानन, बाल गणपति[10] आदि नामों से पूजित थें। कार्यसिद्धि देव होने के कारण बौद्धों–जैनो ने भी पूर्व मध्य में उन्हें अपना लिया। गुर्जर–प्रतिहार राज्य–सीमा में विनायक गणेश नाम से पूजित थे। बुंदेलखण्ड की जनता और वहां का चंदेल राजवंश भी गणेश का उपासक था। खजुराहों के देव मन्दिरों में गणेश की विभिन्न आसनों और मुद्राओं की अनेक मूर्तियों उत्कीर्ण की गई। इनमें सें द्विभुज से लेकर दस भुजाओं तक ही है। गुजरात में भी गणेश के भक्त थें। गणेश, शिव–परिवार से संबंधित होने से भारत के अनार्यों के उपास्य देवता मानें गयें। परन्तु पूर्व युग में कल्याण के देवता के रुप में वे भारतीय समाज में अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो गये थे।

नवग्रह–पूजनः–

समृद्धि, शान्ति, वृष्टि (कृषि के लिए) दीर्घायु, पुष्टि एवं अम्मार (शत्रु–विनाश)की कामना हेतु विभिन्न धातुओं से निर्मित (स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि) अथवा सुगंधित लेप द्वारा पटलिखित नवग्रह–प्रतिमाओं के पूजन का विधान स्मृति–ग्रन्थों में मिलता है। नवग्रहों में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध गुरु, शुक्र, शनि, राहु, और केतु की ही गणना की जाती थी। इन नवग्रंहों की शांति 'स्वस्तयन' और 'ग्रहयाग' के लिए होती थी। खजुराहों, उड़ीसा के भुवनेश्वर और बंगाल के मन्दिरों में नवग्रह पट्ट स्पष्ट रुप से उत्कीर्ण किया गया था। अतः पूर्व मध्य युग में नवगहों की पूजा को अपना लिया गया था।

अश्ट दिक्पालः–

पौराणिक देवशास्त्र के अनुसार विश्व की आठ दिशाएं– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान्य, आग्नेय, नैऋत्य एंव वायव्य– आठ संरक्षित देवताओं द्वारा शासित है। इन्हें दिक्पाल या लोकपाल कहा गया है। दिक्पालों की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। खजुराहो में प्राप्त अष्ट दिक्पालों की प्रतिमाओं के आधार पर यह सहज ही मान लिया जा सकता है कि पूर्व मध्य युग में भी ये पूजनीय थे। इनकी पूजन इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति वरुण, वायु, कुबेर और ईशान कों सामान्यतता मान लिया गया था। भुवनेश्वर के मन्दिरों में भी इन्हें उत्कीर्ण किया गया। अतएव इनकी पूजा हिन्दू धर्म का अंग बन गयी। गंगकालीन मन्दिरों में भी दिक्पाल पूजित थे।

हनुमान–पूजाः–

पूर्व मध्य युग में विष्णु के राम अवतार से संबंधित हनुमान की पूजा का भी प्रचलन हुआ, क्योंकि पवनपुत्र हनुमान राम के भक्त, सहायक, दूत थे। आर्यों ने उन्हीं की सहायता से विजय पायी थी। अतः कृतज्ञता हेतु उनको पूजने लगे।[11] चंदेल राज पृथ्वी वर्मा के अनेक सिक्कों के पृष्ठ भाग पर हनुमान उत्कीर्ण थे। यह उनके प्रति भक्ति का ही ज्ञापन था खजुराहों में हनुमान का मूर्तिकरण कर उनकी पूजा स्वतंत्र रुप से की जाती थी।[12]

ब्रह्मा की पूजाः–

पूर्व मध्य कालीन भारत में ब्राह्मण धर्म की दार्शनिक प्रवृतियां अज्ञात है। फिर भी ब्रह्या की पूजा के प्रमाण मिलते है। अजमेर स्थित पुष्कर के निकट ब्रह्मा का विशाल मन्दिर था। चौहान राजाओं में गिने चुने ही ब्रह्य का श्रंगार तथा पूजन करते थें । पृथ्वीराज विजय से ज्ञात होता है कि चौहान नरेश सोमेंश्वर ने एक मन्दिर में ब्रह्म की मूर्ति का अनावरण किया था। राजा रतनपाल के सेवाडी ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि राजा ब्रह्या को पूजता था। नड्डुल के चौहान राजकुमार कीर्तिपाल भी इष्टदेव ब्रह्मा की स्तुति किया करते थे। खेड़ स्थित ब्रह्या के मन्दिर तथा बीठु स्थित सावित्री और ब्रह्मा के मन्दिर की कथा प्रसिद्ध है और वसन्तगढ़ (सिरोही) के ब्रह्मा मन्दिर में ब्रह्म की दो भुजाएं और तीन मुख प्रदर्शित किये गये है। और वसन्तगढ़ (सिरोही) के ब्रह्ममा की अन्य प्रतिमाएं सेवाडी (जोधपुर), बसढ़ (प्रतापगढ़), सिरोड़ (कोटा), किरादू (जोधपुर), बिजौलिया (मेवाड), तथा ओंसिया में प्राप्त होती है। रणपुर (जोधपुर) में एक मूर्ति मिली है जिसके शिरस्थ भाग में ब्रह्म, विष्णु और शिव है तथा नीचे का भाग सूर्य का है। इसी प्रकार की एक मूर्ति रामगढ़ (कोटा) में भी पायी गयी है। जालोरा में ब्रह्मा का एक पुराना मन्दिर था। ओसिया और किराडू में प्राप्त मूर्तियों में भी चतुर्वेद रुप मिलती है। यहां हम डॉ0 शर्मा के विचार से सहमत है कि उन दिनों प्रमुख देवों की सयुक्त रुप से भी पूजा की जाती थी। ब्रह्या की पूजा का प्रमाण चन्देलों, परमारों, प्रतिहारों तथा कलचुरियों आदि के लेखों में प्राप्त होता है।

अन्य देवः–

अन्य देवी–देवताओं के युग्म की पूजा का विधान भी था। हरिहर (बादामी), सूर्य–ब्रह्य (बंगाल) और मर्तड–भैरव (बंगाल) भी पूजित थे।राम–सीता भी पूजनीय थे। गंगा–यमुना – सरस्वती आदि पवित्र पूजनीय नदियों का मर्तिकरण कर उनकी उपासना भी आंरभ हो गयी थी। कहीं–कहीं तो विष्णु–महेश–सूर्य के चतुष्ट युग्म की भी पूजा होने लगी थी, क्योंकि इनमें अभेद स्थापित कर दिया गया था। नाग–पूजन वृक्ष–पूजन, तुलसी–पूजन, योगिनियों और अप्सराओं की उपासना में भी लोग विश्वास करने लगे थे। अनेक घरों में शालिग्राम की पूजा– अर्चा भी होने लगी थी। चन्द्रमा की पूजा भी की जाती थी और 'चुंदर भक्तों' ने अपने सम्प्रदाय थे।

धार्मिक दान–पुण्य, त्योहार, मेले, उत्सव, उपवास, तीर्थयात्राएं आदिः–

प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों के अतिरिक्त भी कई कृत्यों को धार्मिक बाना पहना दिया गया था। प्रत्येक रीति–रिवाज और क्रिया–क्रम धार्मिक माने जाने लगे थे। धर्म का आवरण ओढ़ा देने के कारण उनका प्रत्येक धर्मानुयायी के लिए अनिवार्य बन गया था। धार्मिक उत्साह से उन्हे किया जाने लगा था क्योकि उनमें मोक्ष की भावना निहित कर दी गई थी।

दानः–

दान इसी प्रकार का एक धार्मिक कृत्य था जों प्रत्येक काल से चला आ रहा था। पूर्व मध्य युग में दान का बड़ा भारी महत्व था। ऐसी मान्यता थी कि कालयुग में दान रूपी वृक्ष समय आने पर दाता को अभिलषित फल देता हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा और हैसियत से दान दे सकता था। दान में भूमि स्वर्ण, अन्न, रजत, गौ आदि दिया जाता था। मन्दिरों और ब्राह्मणों को अग्रहार–ग्राम दान के रूप में मिलते थे। काश्मीर नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ ने जेष्ठेश्वर रूद्र के मन्दिर के खर्च हेतु कई ग्राम दान में दिये थे।[12]

तीर्थ यात्राएंः–

धार्मिक जीवन में धर्मयात्राओं की दृष्टि से तीर्थयात्राओं को बहुत ऊँचा ठहराया गया। पुरातन युग से ही तीर्थयात्राओं और तीर्थस्थलों का धार्मिक महत्व स्वीकारा गया। सामान्यतया धर्मप्राण जनता इन तीर्थो की यात्रा करती थी। क्योंकि इन स्थानों के दर्शन कों ही लोंग मोक्ष का साधन मानते थे। ऐसा विश्वास था कि पवित्रता के जिन स्थलों से बुद्धि उत्कृष्ट होती है वे बहुत ही मूल्यवान माने जाते है। पूर्व मध्य युग में भी तीर्थस्थानों का महत्व यथावत था। तीर्थ पवित्र नदियों के तट पर अवस्थित थे। वहां किसी प्रसिद्ध देवी–देवता का मन्दिर रहता था। हिन्दुओं के लिए तीर्थयात्राएं वांछनीय ही नहीं वरन, अनुमत और श्लाध्य है। एक मनुष्य पवित्र स्थान के लिए, किसी महत्वपूर्ण पूजनीय मूर्ति के लिए अथवा कुछ पवित्र नदियों के लिए चल पड़ता है। उनमें वह पूजन विधि सम्पन्न करता हैं। व्रत रख ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा अन्यों को दान देता हैं व सिर मुंड़ाकर घर लौटता है। यह सब पूर्वजों के श्राद्ध आदि के निमित भी किया जाता था।

तीर्थों में वाराणसी अथवा काशी का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। वह ब्रह्मा की बनायी दूसरी अमरावती नंदनवन मानी गयी, जहां मोक्षदायी गंगा तथा बड़े–बड़ विद्वान् निवास करते थे। काशी, शिक्षा विशेषकर संस्कृत ज्ञान का बड़ा भारी भारत विख्यात केन्द्र था। स्वंय शंकराचार्य ने वहां की यात्रा विशेष अध्ययन हेतु की थी। वह पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट मुक्ति क्षेत्र थी। यहां मरने पर कैवल्य प्राप्त होता था। इसे 'काशी–लाभ' भी कहा गया। अतः धर्मप्राण लोग शरीरांत तक वहां रहता चाहते थे ताकि मृत्यु के बाद उन्हें उत्तम पुरस्कार मिले। वह हिन्दुओं का काबा था। कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा भी अत्यन्त पवित्र स्थल के रुप मे वैष्णवों के मध्य विशेष स्थान रखती थी। पद्यम वह वराह पुराणों ने भी इसके महत्व का प्रतिपादन किया। पूर्व मध्य युग में यहां अनेकों भव्य मन्दिर थे। अलबीरुनी भी माहुर (मथुरा) कों ब्राह्मणों से भरा तीर्थएवं वासुदेव की जन्मस्थली निरुपित करता है।[13] सोमनाथ–प्रभासपट्टन भी भारत की धर्मप्राण जनता ही श्रद्धा–भक्ति का अनुपग तीर्थ माना जाता था। वहां काश्मीर से पुष्पों टोकरी और गंगाजल प्रतिदिन पूजार्थ लाया जाता था। भारत के द्वाद्वश ज्योतिर्लिंग, भारत के प्रमुख तीर्थ मान लिए गये थे। वैसे स्कंद पुराण भारत में स्थित 68 शिवलिगों की पूजा का विवरण देता है। इनमें सेतुबंध, रामेश्वरम्, त्रयंबकेश्वर, केदारनाथ आदि थे। अयोध्या, काशी, कांची, मथुरा, अवंतिका, पुरी, द्वारावती आदि मोक्षदायिनी नगरियां थी अतः तीर्थयात्री अवश्य ही वहां जाते थे।

प्रयाग अपने संगम–गंगा, यमुना, सरस्वती तथा गया अपने श्राद्ध पक्ष के कारण प्रसिद्ध था। गंगा भारत की प्रसिद्धतम धार्मिक नदी थी और तीर्थयात्री गंगास्नान हेतु जाते रहते थे जो कि 'गंगा जाना' (गंगा यात्री) कहलाते थे। हरिद्वार अथवा गंगाद्वार भी तीर्थ था। जहां दूरस्थ प्रदेशों से सैकड़ों–हजारों तीर्थयात्री आकर गंगा स्नान कर दान पुण्य करते थे। अतः तीर्थयात्राओं ने धार्मिक जीवन में स्थायी जगह बना ली थी। इनको जाने वाले तीर्थयात्री सर्व कर्म–पीड़ा–विनिर्मक्त हो जाते थे ऐसी धार्मिक मान्यता थी।

त्यौहार–उत्सव–मेले–उपवासः–

गुप्त युग तक पुराणों का लेखन, संकलन और संपादन पूरा हो गया था। पुराणों और अन्य धर्म साहित्य ने अनेक धार्मिक कृत्यों, त्यौहारों, उत्सवों, मेले, उपवास का निर्धारण कर दिया। इन सबको धार्मिक परिवेश का दर्जा मिला था। विभिन्न देवी–देवताओं तथा ग्रहों से सम्बन्धित कथात्मक आकलन कर निश्चित तिथियों पर त्यौहारों–मेलों–उपवासों का आयोजन किया जाने लगा, इन्हें श्रद्धा–भक्ति से प्रत्येक मनुष्य मानता था। यद्यपि सभी पर्वों में स्त्री–पुरूष समान रूप से भाग लेते थे, परन्तु कुछ उत्सव मात्र बच्चों व स्त्रियों के लिए ही होते थे।

वर्ष मास में मास सप्ताहों में विभाजित कर दिये गये थे। इन पर भी धार्मिक आवरण चढ़ा दिया गया प्रत्येक माह में भारतीय कोई न कोई धार्मिक पर्व मनाते ही थे। इन दिनों व माहों के नाम नक्षत्रों और देवताओं पर आधारित थे। ये ही इनके स्वामी निरूपित हुए।

गणेश–उत्सव भी काफी लोकप्रिय था। लोग गणेश–मूर्ति की स्थापना कर उसका पूजन करते थे। यह आषढ़ की चतुर्थी के दिन आयोजित किया जाता था। श्रावण मास में प्रत्येक सोमवार को लोग शिव के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिए श्रावण सोमवार का उपवास करते थे। कृष्ण–जन्म उत्सव भी मनाया जाता था। यह कृष्ण–जन्माष्टमी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस दिन लोग उपवास रखकर फलाहार (दूध–फल) आदि ही करते थे। दुर्गा पूजा का त्योहार आश्विन (कुआर मास) में मानते थे। यह पूजन नौ दिन तक चलता था। अतः यह 'नवरात्र' उत्सव भी कहलाता था।

'दीपावली या दीवाली' समाज के सभी वर्गो और जातियों के लोग धार्मिक भेदभाव भुलकर सोल्लास कार्तिक मास में मानते थे। स्नान के बाद नये वस्त्र धारण किए जाते

और देव–दर्शन के बाद लोग एक– दूसरे को उपहार आदि देते थे।

महाशिवरात्रि का पर्व भी लोग मानते थें। रात–भर शिव का पूजन कर जागरण होता था। फाल्गुन का सर्वप्रिय त्यौहार होली था। इसे भी सभी वर्णो– वर्गो के लोग उत्साहपूर्वक मनाते थे। इस अवसर पर रंग–गुलाल का उपयोग खुल कर किया जाता था। ग्राम–नगर के बाहर होलिका–दहन की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती थी। आज भी यह पर्व आनंदपूर्वक मनाते है और लोग आपसी वैर–भाव भूलने का प्रयत्न करते हैं।

तीर्थ स्थानों, विशेष पर्वो आदि पर मेलों का भी आयोजन होता था। इसमें सब से प्रसिद्ध कुंभ था। यह भारत के प्रमुख चार तीर्थस्थलों पर होता था। उत्तर भारत में गंगा नदी के तट पर प्रयाग एंव हरिद्वार, दक्षिण में गौतमी गंगा, गोदावरी के किनारे नासिक एंव मध्यप्रदेश में क्षिप्रा के तट के उज्जयिनी में हर बारहवें वर्ष में लगता था। उज्जैन का कुंभ सिंहस्थ कहलाता था। अर्द्धकुंभ भी होता था। स्थानीय रूप में भी मेले होते थे। विशेषकर शिवरात्रि पर शैव मन्दिरों में लोग दर्शनार्थ जाते थे। आसपास के लोग भी पूजार्थ वहां आते थे। उत्सव, मेले का रूप धारण कर लेता था। संक्रांति पर गंगा स्नान पर दान देना स्पृहणीय था। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसरों पर भी धार्मिक कृत्य किये जाते थे।

मंत्र–तंत्र और जादू–टोना भी धार्मिक विश्वास का अंग बन गया था। अनेक तांत्रिक इस पद्धति से पूजा–उपासना करते थे। यह शायद आदिम जातियों के धार्मिक विश्वासों, शैव, शाक्त और सहजयानी बौद्ध पूजा का प्रभाव था। मंत्रो को सिद्ध करने के लिए प्रयोग भी किये जाते थे।

धर्म ने इस काल में व्यापक रूप धारण कर लिया था। धार्मिक कर्म बहुमुखी हो गए। उपरोक्त तथ्य इसके समर्थक हैं। यही पूर्व मध्य युग की विशेषता बन गया। सर्वोत्तम कल्याणकारी देवों से लेकर जादू–टोना तक उसका विस्तार हो गया। धर्म का स्वरूप पहले इतना व्यापक न था। इस युग में मानव का हर पल, दिन मास और समस्त जीवन धार्मिक नियंत्रण में आ गया। इस युग की लोकमान्य धार्मिक प्रवृतियों ने थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आगामी सदियों में भी अपना प्रभुत्व बनाए रखा। आज भी सुधरे रुप में उनका चलन है। अलबरुनी ने हिन्दू धार्मिक त्यौहारों की तिथि सहित विस्तृत–विवेचना की है।

प्रचलित विश्वास :

प्रायः सभी कालों में लोग भविष्य में घटने वाली घटनाओं के संकेतों तथा पूर्वाभास में विश्वास करते रहे है। आज वैज्ञानिक युग के विकास के साथ ही साथ इन विश्वासों में भी परिवर्तन होता जा रहा है। वैज्ञानिक युग में अन्धविश्वास एक नये सिरे से तथा अत्याधिक उलझा हुआ हो गया है। तब व्यापक रुप से लोंगों की धारणा कर्तव्य से हटकर भाग्य पर आ जमी थी। हिन्दू समाज में अन्ध–विश्वास पूर्णरुपेण घर कर गया था। लोग भिन्न–भिन्न जादू–टोना तथा भूत–प्रेत आदि मे विश्वास करते थे। ये प्रथाएं प्राचीन काल से ही विद्यमान थी। पृथ्वीराज विजय से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज तृतीय कों बाल्यावस्था में बुराइयों से बचने हेतु शेर के पंजानुमा और दशावतार विष्णु युक्त हार गले में धारण कराया गया था। पूर्व मध्य काल में सगुन तथा दूसरे संकेतों में लोग विश्वास करते थें।

पक्षियों की उड़ान तथा पुरूषों का रास्ता काटना भी शुभ–अशुभ का सूचक माना जाता था। बीसलदेव रासो से ज्ञात होता हैं कि मुख्यतया इन पशुओं में लोमड़ी, हरिण, सिंह, सियार, सांप, बिल्ली द्वारा रास्ता काटना शुभ अथवा अशुभ सकुन का सूचक माना जाता था। शुभ यात्रा पर कौबे का कांव–कांव करना भी अशुभ सूचक माना जाता था। अरब लेखक अबू जैद से ज्ञात होता हैं कि शकुन कौवों के उड़ान से भी लिया जाता रहा। आंख तथा अंग का फड़कना दोनो ही शुभ और अशुभ शकुन का सूचक माना जाता था। इस प्रकार पूर्व मध्य कालीन अभिलेखों एंव साहित्यिक स्त्रोतों से ज्ञात होता हैं कि इस समय समाज में विभिन्न देवताओं की पूजा उनकी उपासना भी दान, पुण्य, मेले, उत्सव आदि मनाये जाते थे।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. आनंदगिरि : शंकर दिग्विजय, 3–7।
2. किताब उल–तवारीख, भाग प्ट,पृ0 9–10।
3. बील : बुद्धिस्ट रिकॉड्स, भाग गप्,पृ0 274–75।
4. अहसन– उत–तकासीम, पृ0 483।
5. रामश्रय अवस्थी : खजुराहों की देव प्रतिमाएं, पृ0 170–83।
6. वि0 चं0 पाण्डे : प्राचीन भारत का राजनीतिक – सांस्कृतिक इतिहास, पृ0 236।
7. अग्नि पुराण, अध्याय 17, श्लोक, 1–8 (कल्याण)।
8. वासुदेव उपाध्याय : मध्यकालीन भारत, पृ0 338।
9. ऋग्वेद : 2–33–1।
10. आर0 जी0 भंडारकर : वैष्णव, शैव एंव अन्य धार्मिक मत, पृ0 169।
11. जे0 एन0 बनर्जी : डेवलपमेट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ0 357।
12. अलबीरूनी : भाग प्,पृ0 142।
13. लक्ष्मीधर : कृत्य कल्पतरू– तीर्थ विवेचना कांड, पृ0 175–76।
14. वामन पुराण 52–254।

RRIJM 2015, All Rights Reserved